इकाई 17

जनजाति, क्षेत्र और सामान्य संपत्ति संसाधन

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 आरंभिक इतिहास

17.3 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था और सामान्य संसाधन

17.4 जनसंख्या वृद्धि तथा सामान्यों की असंभावना?

17.5 सामान्यों की संस्कृति

17.6 निष्कर्ष

17.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जान पाएँगे :

- "सामान्यों" की अवधारणा का ऐतिहासिक विकास;
- भारत में "सामान्यों" और मिश्रित अर्थव्यवस्था का संबंध;
- जनसंख्या वृद्धि तथा "सामान्य"; और
- "सामान्य" की संस्कृति।

17.1 प्रस्तावना

क्षेत्र और सामान्य संपत्ति संसाधन की अवधारणाएँ, जनजाति की अवधारणा के साथ निकट से संबंधित हैं। वास्तव में, कोई व्यक्ति अनंत काल से जनजातियों को संपोषित करने वाले क्षेत्रों को सोचे बिना, जनजातियों के विषय में नहीं सोच सकता है। जनजातियाँ "सामान्य संपत्ति संसाधनों" पर कार्य करने के लिए भी जानी जाती हैं जो उन्हें आजीविका देने के अतिरिक्त, सामाजिक और भावनात्मक रूप से बाँधती भी हैं। इस प्रकार, हम देखते हैं कि "सामान्यों" (जिन्हें "सामान्य संपत्ति संसाधन" भी कहते हैं) और जनजातियों की अवधारणाएँ अविलग रूप से अंतर्संबंधित हैं। वास्तव में, "सामान्य" जनजातियों के जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसलिए, हम "सामान्य" की अवधारणा और उससे संबंधित पक्षों को भारत में जनजातियों के विशिष्ट संदर्भ में समझेंगे।

किंतु "सामान्य" का अर्थ क्या है? "सामान्य" को परिभाषित करना सरल नहीं है—यह न तो निजी संपत्ति है और न ही सार्वजनिक संपत्ति है; न यह व्यावसायिक फार्म है, न सामुदायिक समूह, न व्यापारिक संस्था, न राज्य उपयोगी, न ही ईर्ष्या जन्य निजी प्लॉट और न ही राष्ट्रीय अथवा नगर उद्यान। स्वीकृत अर्थ है कि, "सामान्य", एक प्राकृतिक संसाधन है जिसे स्थानीय समुदाय बाँटते हैं और जो यह निर्णय लेते हैं कि कौन क्या और कैसे उपयोग करेगा। हमारा उद्देश्य यहाँ उन सिद्धांतों को समझना है जो भारत में जनजातियों के विशिष्ट संदर्भ में "सामान्य" का उपयोग निर्धारित और परिभाषित करते हैं।

17.2 आरंभिक इतिहास

रोम के लोगों ने तीन प्रकार की संपत्ति के अन्तर को स्पष्ट किया: वे चीजें जो किसी व्यक्ति या परिवार द्वारा रखी जा सकती हैं, वे चीजें जो राज्य सार्वजनिक उपयोग के लिए बनाता और अलग रखता है, जैसे सार्वजनिक इमारतें और सड़कें तथा प्राकृतिक चीज़ें जिन्हें सभी उपयोग करते हैं जैसे, हवा, पानी और वन्य पशु। इसे रोमन कानून के भय सार, जस्टिनीयन संस्थान में केंद्रीकृत किया गया था जिसके अनुसार : "प्राकृतिक नियमों के अनुसार, ये सभी वस्तुएँ मानव जाति के लिए सामान्य हैं—हवा, बहता पानी, समुद्र और फलस्वरूप, समुद्र तट।"

इंग्लैंड में मध्यकाल के दौरान, सामान्य, गाँव के लोगों द्वारा बाँटी गई भूमि होते थे जिनका उपयोग चारे की खोज, शिकार, फसल उगाने और लकड़ी काटने के लिए किया जाता था। 1215 में, मैग्ना कार्टा ने वनों और मछली पालन क्षेत्रों को, सभी के लिए उपलब्ध संसाधनों में रख दिया। अनेक राज्यों ने अपने संविधानों में यह घोषणा कर दी कि प्राकृतिक संसाधन लोगों के लिए हैं और सरकार लोगों के कोषाध्यक्ष का कार्य करेगी। इस दृष्टि से, "सामान्य" को समुदाय' के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है।

18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति से आरंभ करके, जब श्रम एक वस्तु बन गया तथा भूमि के आस-पास बाड़ा लगा कर सामान्यों को अलग कर दिया गया तो समुदाय की अवधारणा बदल गई। यह निजीकरण का आरंभिक रूप था, पहले भूमि मालिकों द्वारा और धीरे-धीरे औद्योगिक निगमों द्वारा और बाद में दोनों को मिलाकर। इस समीकरण से खुले प्रतिस्पर्द्धी बाजार के माध्यम से विकास को बढ़ावा मिला। इसके समानांतर, सरकार की देख-रेख में विकास का एक अन्य मार्ग निकला।

ये शासन व्यवस्था, सुगमता नियंत्रित करने के तरीके से भिन्न थीं। विश्व के विभिन्न भागों में विभिन्न ढंग से कार्य करती थीं। हमारी यहाँ रुचि भारत में हैं।

17.3 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था और सामान्य संसाधन

भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग चुना—यहाँ निजी क्षेत्र भी था और सार्वजनिक क्षेत्र भी था। भारत में विदेशी राज्य ने लापरवाही से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जिसके दौरान अनेक स्थानीय समुदाय, विशेषकर, जनजातिय वन आवासी बेघर हो गए। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी राज्य तथा निजी क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों का बुरी तरह दोहन करता रहा। यह औद्योगिक विकास के लिए सही था। अनेक जनजातिय और कृषक आंदोलनों ने इसका विरोध किया।

हालाँकि, साठ के दशक में जब लापरवाही के कारण उद्योग के प्राकृतिक संसाधन आधार का अवमूल्यन होने लगा तो सरकार ने अपनी नीति बदल दी। एक ओर "प्रकृति के संसाधन" जैसे वन्य जीवन उद्यान, राष्ट्रीय उद्यान तथा जैव क्षेत्र साधन के बाड़े बनाए गए। इन्हें मुख्यतः औद्योगिक उत्पादन के लिए जैव विषमता को संरक्षित करने के लिए बनाया गया था। इसके अतिरिक्त, सरकार ने प्राकृतिक साधन खनन की भी अनुमति दे दी। दूसरी ओर, सामुदायिक अधिकार जैसे जीविका हेतु उपयोग के अधिकारों को उन क्षेत्रों में पहचान दी गई। इसके कारण लाखों लोग बेघर हो गए तथा उन्हें पर्याप्त और उपयुक्त मुआवजा भी नहीं मिला। कई स्थानीय समुदायों ने भी कष्ट भोगा क्योंकि उनकी आजीविका का संसाधन आधार उनसे छीन लिया गया था।

शोध से पता लगा कि ऐसे समुदायों की एक बड़ी संख्या को उनके सामान्यों से वंचित कर दिया गया। उदाहरण के लिए, एन.एस. जोधा ने बताया कि सामान्य संपत्ति संसाधनों को अवमूल्यित कर दिय गया है और इनकी उत्पादकता पहले से बहुत कम हो गई है।

फलस्वरूप, ग्रामीण धनाढ्य लोग इन पर बहुत कम निर्भर रहते हैं। इन संसाधनों से अल्प मात्रा में भोजन लेना इनके लिए लाभकारी नहीं है। दूसरी ओर, ग्रामीण गरीब (छोटे किसान और भूमिहीन श्रमिक) जिनके पास सीमित विकल्प हैं अधिकाधिक ऐसे संसाधनों द्वारा प्रदत्त कम लाभकारी विकल्पों पर निर्भर करते हैं। गाँवों में, जहाँ जोधा ने अध्ययन किया है, 84 से 100 प्रतिशत ग्रामीण गरीब लोग ईंधन, चारे और भोजन के लिए सामान्य संपत्ति संसाधन पर निर्भर करते हैं; अमीर किसानों का यही अनुपात 20 प्रतिशत से अधिक नहीं है (राजस्थान के अत्यधिक सूखा क्षेत्रों को छोड़कर); और मध्यवर्गीय फार्म परिवार अमीरों[2] से अधिक संख्या में इन संसाधनों पर निर्भर करते हैं।

मधु सरीन ने कहा कि "वन-निर्भर ग्रामीणों की गरीबी और पृथक्करण के कारण अत्यधिक वन नाश हुआ है और सरकारी वन विभाग सदैव वन समुदायों के साथ झगड़े में उलझे रहते हैं। वास्तव में, यह सरकारी वनों में गरीब और पृथक किए गए वनवासियों की सुगमता को नियंत्रित करने में सरकार की अक्षमता , जिसके कारण संयुक्त वन प्रबंधन का जन्म हुआ। भारत की कुल भूमि क्षेत्र में से 23 प्रतिशत सरकार के वन हैं जो देश के सबसे बड़े भूमि-आधारित सामान्य संपत्ति संसाधन का प्रतिनिधित्व करते हैं। संयुक्त वन प्रबंधन देश के 540 लाख जनजाति के लोगों और अन्य पिछड़े वन समुदायों, विशेषकर महिलाओं के लिए विशेषकर उपयोगी है क्योंकि वे आज भी आजीविका और अपनी अन्य आवश्यकताओं[3] के लिए मुख्यतः वनों पर निर्भर रहते हैं।"

73वाँ संशोधन काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ। इसके कारण स्थानीय समुदाय अपनी परंपरा के अनुसार अपने सामान्य संसाधनों का प्रबंधन करते हैं। इस उपाय के माध्यम से सरकार ने बजारोन्मुख और सरकार-प्रायोजित विकास के कारण पैदा हुए अभावों और तनावों के प्रति समुदाय की प्रतिक्रिया को वैधता प्रदान की। सामान्य संपत्ति संसाधन भारत (और अन्य विकासशील देशों) के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्रों में सामुदायिक संपत्ति का महत्वपूर्ण अंग हैं। वे अनेक भौतिक उत्पादों के स्रोत हैं; रोजगार तथा आय के अवसर देते हैं और वृहत् सामाजिक और पारिस्थितिक लाभ उपलब्ध करवाते हैं।

ये कदम सामान के औद्योगिक उत्पादन के लिए संसाधनों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चियत करने, पूँजी एकत्रीकरण में मदद करने, सस्ते श्रमिक उपलब्ध करवाने और यथा संभव सामुदायिक अधिकारों की रक्षा हेतु उठाए गए थे। सामान्य संपत्ति संसाधनों में मत्स्य पालन, वन्य जीवन, भूमि और भूमिगत जल, पहाड़ तथा वन शामिल हैं। इन संसाधनों का उपयोग "छोड़ने" और "घटाने" का प्रकार्य था। छोड़ने का अर्थ यह है कि सशक्त उपभोक्ताओं द्वारा संसाधन की भौतिक प्रकृति पर नियंत्रण करना महँगा पड़ सकता है और अतिशयता की स्थितियों में असंभव हो सकता है। यह दूसरी बात को समझाता है; इस मामले में, उपभोक्ता अन्य लोगों के कल्याण में इसे "घटा" सकने में सक्षम होता है।

औद्योगिक विकास की यह प्रक्रिया (जो निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों का संयोजन थी) सार्वभौमिकरण के कारण तेज हो गई। जैसा कि कहा जा चुका है, यह बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं और माँगों को पूरा करने के लिए जरूरी था। इस विकास का परिणाम विपरीत हुआ; इसके कारण संसाधनों से वंचित लोग और गरीब हो गए तथा इन संसाधनों से जुड़े लोग अधिक अमीर हो गए। दूसरे शब्दों में, यह "छोड़ने" और "घटाने" का उदाहरण है।

बॉक्स 17.1 : औद्योगिक विकास और "सामान्य" संसाधन

जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी, औद्योगिक उत्पादन विस्तृत तथा सघन होता गया और इसने मानवीय श्रम की मात्रा के साथ उत्पादों में प्राकृतिक तत्व का स्थान ले लिया।

इस प्रक्रिया के दौरान, यह बाहरी जगत की अमानवीय प्रकृति के साथ संबद्ध हो गया, प्रकृति के तीन वरदान जो हमें मानव बनाते हैं, शरीर, मस्तिष्क और आत्मा। इस दौरान नाभिकीय-सैन्य प्रचालन विकसित हो गए और उन्होंने सामान्यों–प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण कर लिया। एक ओर जहाँ नाभिकीय-सैन्य ताकत बढ़ी, वहीं राष्ट्रीय सुरक्षा धीरे-धीरे कम हो गई। एक ओर, जहाँ जनसंख्या में वृद्धि हुई वहीं भूमि की वहन क्षमता घट गई।

जनसंख्या वृद्धि और तीव्र भारी औद्योगिक विकास ने सामान्यों के सतत अपघटन को निर्धारित किया। कम लोगों को सुलभ होने से, आज स्थिति यह हो गई है कि वे सभी लोगों के लिए दुलर्भ हो गए हैं क्योंकि वे न केवल अपघटित हो गए हैं बल्कि पुनरुजीवित करने की उनकी क्षमता भी समाप्त हो गई है। प्रकृति के पंच तत्वों धरती, वायु, जल, अग्नि और आकाश द्वारा परिभाषित प्रकृति के सभी क्षेत्र सदा के लिए अपघटित होते जा रहे हैं।

हवा और पानी जैसे प्राकृतिक चीजों की सभी को आवश्यकता होती है। ये औद्योगिक जगत द्वारा प्रदूषित हो गए हैं और इस प्रदूषणकारी प्रक्रिया से संबद्ध लोग इस प्रदूषण के दुष्प्रभाव झेल रहे हैं। इसके कारण हवा और पानी भी बिकाऊ हो गया है। इसका अर्थ यह है कि कभी जो सभी का था, आज कुछ के पास रह गया है।

इस प्रक्रिया में प्रकृति के संसाधनों के दोहन, उनके पुनर्त्थान की दर से कहीं अधिक तेज दर से किया गया है। यहाँ प्रकृति में बाहरी जगत के प्राकृतिक संसाधन ही नहीं बल्कि मनुष्यों के भीतर की प्रकृति भी शामिल है। उससे प्रकृति के पुनरुजीवित और दोबारा ठीक होने की क्षमता भी कम हो गई है। उसी कारण एड्स (AIDS) जैसे रोग हो रहे हैं क्योंकि बीमारी के प्रतिरोध की क्षमता कम हो गई है। दूसरे शब्दों में, हमारे द्वारा किया गया भोजन या तो स्वच्छ नहीं था या कम पौष्टिक था। इसने हमारे अनुवांशिक कोड को प्रभावित करना आरंभ कर दिया। हमारी खाद्य सुरक्षा धीरे-धीरे कम हो रही है क्योंकि खाद्य उत्पादन[4] भी कम हुआ है और भोजन की गुणवत्ता अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने जैसी नहीं है।

17.4 जनसंख्या वृद्धि तथा सामान्यों की असंभावना?

अपनी "सामान्यों की त्रासदी "[5] में गैरेट हार्डिन (1968) ने तीव्र जनसंख्या वृद्धि की परिस्थितियों में सामान्यों को बचाए रखने की असंभावना पर विचार किया है। उसके तर्क की कुछ मुख्य बातें यहाँ संक्षेप में दी गई हैं। मैं हार्डिन की पुस्तक से आवश्यक गद्यांश उद्धृत कर रहा हूँ।

> "सामान्यों की त्रासदी[6] इस प्रकार विकसित होती है। एक भूमिखंड की कल्पना करें। यह अपेक्षित है कि कोई भी चरवाहा अधिक से अधिक मवेशी सामान्य पर लाना चाहेगा। इस प्रकार का प्रबंध संतोषजनक रूप से सदियों तक चल सकता है क्योंकि जनजातिय युद्ध, शिकार और बीमारियों के कारण आदमी और पशुओं, दोनों की संख्या भूमि की वहन् क्षमता से कम रहती है। अंत में, हालॉकि, वह दिन आता है जब सामाजिक स्थिरता का चिर स्वप्न सत्य हो जाता है। इस समय, सामान्यों का वंशागत तर्क ग्लानि रहित रूप से त्रासदी उत्पन्न करता है। तर्कसंगत व्यक्ति होने के कारण, प्रत्येक चरवाहा अपने लाभ को बढ़ाना चाहता है। प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः, कमोवेश जागरूकता के साथ, वह पूछता है, "अपने पशुओं के दल में एक और जानवर जोड़ना मेरे लिए कैसे फायदेमंद हो सकता है?
>
> "इस लाभ में एक सकारात्मक तथा एक नकारात्मक तत्व होता है।

1) सकारात्मक तत्व, एक पशु अधिक जुड़ने का प्रकार्य है। चूँकि चरवाहे को सभी लाभ एक अतिरिक्त पशु बेचने से ही मिलते हैं, तो सकारात्मक लाभ लगभग +1 है।

2) नकारात्मक तत्व, एक अतिरिक्त पशु के कारण होने वाली अधिक चराई है। चूँकि, अतिरिक्त चराई का प्रभाव सभी चरवाहों को बाँटना पड़ेगा, अतः चरवाहे के किसी विशिष्ट निर्णय का नकारात्मक लाभ नही होता है।"

यही त्रासदी होती है। प्रत्येक व्यक्ति ऐसी व्यवस्था में बँधा है जो उसे अपने पशु समूह को असीमित रूप से बढ़ाने के लिए बाध्य करती है—वह भी ऐसे संसार में जो सीमित है। सभी लोग "नाश" की ओर बढ़ रहे हैं और प्रत्येक व्यक्ति सामान्यों की स्वतंत्रता में विश्वास रखने वाले समाज में अपना लाभ देख रहा है। सामान्यों में स्वतंत्रता सबके नाश को जन्म देती है।"

"राष्ट्रीय उद्यान सामान्यों की इसी त्रासदी का एक उदाहरण हैं। उद्यान स्वयं प्रसार में सीमित है ....., जबकि जनसंख्या असीमित रूप से बढ़ रही है। उद्यानों में आने वाले लोग जिन मूल्यों को खोज रहे हैं वे धीरे-धीरे नष्ट हो रहे हैं। साधारणतः, हमें इन उद्यानों को सामान्य नहीं मानना चाहिए अन्यथा ये किसी के लिए भी काम के नहीं रह जाएँगे।"

विपरीत ढंग से, सामान्यों की त्रासदी प्रदूषण की समस्या में दोबारा दिखाई देती है। यहाँ सामान्यों में से कुछ निकालने का प्रश्न नहीं है बल्कि कुछ अंदर डालने की बात है— मलजल, रसायन, विघटनाभिक और पानी में गर्म अपशिष्ट पदार्थ; हवा में जहरीला और खतरनाक धुआँ, नजर के सामने ध्यानाकर्षक और भद्दे विज्ञापन चिह्न लाभ का परिकलन अब भी पहले की तरह होता है। तर्कयुक्त व्यक्ति पाता है कि अपने अपशिष्ट पदार्थों को छोडने से पहले साफ करने की कीमत, उन्हें छोड़ने की कीमत से अधिक है। चूँकि यह सभी के लिए सत्य है, हम सभी "अपना घर गंदा" करने में लगे हैं।"

"खाद्य टोकरी के रूप में सामान्यों की त्रासदी से निजी संपत्ति या कुछ ऐसी ही चीज द्वारा बचा जा सकता है। किंतु हमारे आस-पास के हवा और पानी को ऐसे नहीं बचाया जा सकता, इसलिए गंदगी के ढेर की तरह सामान्यों की त्रासदी को विभिन्न तरीकों, केंद्र नियमों या दंड प्रावधानों द्वारा रोका जाना चाहिए ताकि प्रदूषक को प्रदूषण फैलाने से, उसे साफ करना अधिक सस्ता पड़े। हमें इस समस्या के समाधान में उतनी सफलता नहीं मिली है, जितनी पहले वाली में मिली है। वास्तव में, निजी संपत्ति के बारे में हमारी विशिष्ट अवधारणा, जो हमें पृथ्वी के सकारात्मक संसाधनों को समाप्त करने से रोकती है, प्रदूषण का समर्थन करती है। किसी नदी के तट पर लगी फैक्ट्री का मालिक— जिसकी संपत्ति नदी के बीच तक फैली है—उसे प्रायः यह समझने में तकलीफ होती है कि उसे अपने दरवाजे के पास से बहते पानी को गंदा करने का अधिकार क्यों नहीं है। सामान्यों के इस नए परिप्रेक्ष्य के अनुसार कानून में काट-छाँट करने की आवश्यकता है।

सोचे और करें 17.01

तीव्र जनसंख्या वृद्धि की स्थिति में "सामान्यों" की असंपोष्यता पर गैरेट हार्डिन का तर्क प्रस्तुत कीजिए।

मूलभूत स्तर पर, चूँकि हवा और पानी द्रव्य हैं, अभी मनुष्य अपने जीवन, परिस्थिति, समय, आवास-स्थान, संपत्ति और प्रदूषण से उत्पन्न होने वाली समस्या से निपटने के

माध्यम के आधार पर प्रदूषण को झेलते हैं। इसी प्रकार, वनों में कमी, अनेक पौधों और पशुओं की जाति का लोप विभिन्न लोगों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सकता है —इससे विनाश (प्राकृतिक और मानवीय) हो सकते हैं जैसे बाढ़, भूकंप, बीमारी और रोग आदि.....)।

इस घटना का एक अन्य पहलू है—प्रायः समस्या का सामना करने वाले लोग समस्या के लिए उत्तरदायी नहीं होते हैं। सिद्धांततः प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने का और फलस्वरूप हवा और पानी पर अधिकार है इसलिए किसी को भी हवा और पानी से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए। स्वच्छ पानी को बोतलों में डालना या ऑक्सीजन कक्ष बनाना कोई समाधान नहीं है क्योंकि इसका उपयोग वही लोग कर पाते हैं जो इसके लिए पैसा खर्च कर सकते हैं तथा शेष लोगों को स्वच्छ हवा और पानी से वंचित रहना पड़ता है तथा अपनी तकलीफों से बचने के लिए दवाइयों पर निर्भर रहना पड़ता है। पर्यावरण के लिए अच्छी तकनीकें और प्रदूषणकारियों के लिए दंड तथा गैर-प्रदूषणकारियों के लिए फायदा देने पर भी प्रयास किए जा रहे हैं। इससे समस्या नहीं सुलझती क्योंकि इन कदमों को सर्वव्यापी नहीं बनाया जा सकता और इस प्रकार इनका लाभ संपूर्ण मानव जाति को नहीं मिल सकता।

यह स्पष्ट है कि सामान्यों पर अधिकार केवल गरीबों को जीविका सुनिश्चित करने के लिए संपत्ति पर सामुदायिक अधिकारों तक सीमित नहीं रखा जा सकता है। इससे अधिक, यह सुरक्षा और सभी के लाभ हेतु प्राकृतिक संसाधनों के संपोष्य उपयोग से संबधित है। दूसरे शब्दों में, समर्थ लोगों को यह समझना चाहिए कि उसके दुरुपयोग के परिणाम कमजोर लोगों तक पहुँचते हैं (ये लोग संसाधन के निकट भी हो सकते हैं और दूरी पर भी)।

यदि हम "अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम लाभ" को अपना लक्ष्य मान लें तो यह स्पष्ट है कि मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता जैसा कि "दि वेल्थ ऑफ नेशन्स" (1776) में ऍडम स्मिथ ने कहा था कि कोई व्यक्ति जो "केवल अपना फायदा चाहता हो", "जनहित ... को बढ़ावा देने के लिए किसी अदृश्य शक्ति द्वारा प्रोत्साहित" होता है। हार्डिन के अनुसार, "ऍडम स्मिथ ने यह नहीं कहा कि यह पूर्णतः सत्य है और न ही शायद, उनके किसी अनुयायी ने ऐसा कहा था। किंतु उन्होंने विचारों की एक सशक्त धारा में योगदान दिया है जिसने सदैव तर्कसंगत विश्लेषण पर आधारित सकारात्मक क्रिया के साथ हस्तक्षेप किया है, जिसके अनुसार, ऐसी प्रवृत्ति जो यह मानती है कि व्यक्तिगत रूप से लिए गए निर्णय, वास्तव में, संपूर्ण समाज के लिए सर्वोच्च निर्णय होंगे। यदि यह सोच सही है तो उत्पादन में सरकार के गैर-हस्तक्षेप की वर्तमान नीति का जारी रहना औचित्यपूर्ण है। यदि यह सही है तो हम यह मान सकते हैं कि लोग उपयुक्त जनसंख्या बनाने के लिए व्यक्तिगत उत्पादकता को नियंत्रित करेंगे। यदि यह सोच सही नहीं है तो हमें अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं पर पुनर्विचार करना होगा ताकि हम यह देख सकें कि इनमें से कौन-सी बचाव के लायक हैं।" हार्डिन का कहना है, "अति जनसंख्या के दुष्प्रभावों को तकनीकी समाधानों द्वारा या औद्योगिक व्यवस्था द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छोड़े बिना नियंत्रित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, समुद्र-फार्मिंग या गेहूँ के नए प्रकार विकसित करने की समस्या नहीं सुलझेगी। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या बढ़ाने से वस्तुएँ नहीं बढ़ती है।"

तो क्या सरकार "अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम वस्तुएँ" सुनिश्चित कर सकती है? हम देख चुके हैं कि सरकार हिंसा की प्राथमिक उत्प्रेरक बन गई है विशेषकर, जब वह प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित हो। सरकार ने युद्ध लड़े हैं और आतंक की स्थितियाँ पैदा कर दी है : हम लोग बड़े प्राकृतिक स्रोतों, बड़े बाँधों, उद्योगों, सैन्य स्टेशनों, सड़कों आदि के निर्माण के कारण होने वाले आवास परिवर्तन से परिचित हैं। ऐसे समान मामलों में,

राज्य जनहित के नाम पर गलत काम करता है, जिसका अर्थ है कि ये देश की क्षेत्रीय सीमाओं की जनसंख्या के लिए अच्छे माने जाते हैं। ये शब्द (जनहित और सामान्य लाभ) राष्ट्रीय सुरक्षा के रूप में परिभाषित किए जाते हैं और औद्योगिक उत्पादकता को बढ़ाते हैं।

इस प्रकार, सरकार या बाजार अकेले अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम लाभ सुनिश्चित नहीं कर सकते हैं। इसका कारण है कि इन दोनों का प्राकृतिक संसाधनों पर एकाधिकार है। ये दोनों काफी लाभ देते हैं जहाँ कोई ऐसा आंतरिक नियंत्रक नहीं है जो यह बता सके कि उन्हें पोषित करने वाले सामान्यों का विघटन करते हुए उन्हें कब रूकना है। वास्तव में, वे प्राकृतिक संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते हैं और उनमें गरीबों के लिए विकल्पों की अभिकल्पना के तरीकों में अंतर होता है जो प्राकृतिक संसाधनों पर अपना नियंत्रण खो देते हैं और इस प्रकार आजीविका-विहीन हो जाते हैं — सरकार और बाजार केवल रोजगार उपलब्ध करवा सकते हैं जिन्हें पैदा करना कठिन होता है। विशेषकर गैर-शहरी परिवेश में, अधिक आजीविका के अवसर पैदा करने के विचार से ही, समुदाय-आधारित सामान्यों की अवधारणा स्थापित हुई थी।

हार्डिन का निष्कर्ष

".... सामान्य, यदि औचित्यपूर्ण हैं, तो केवल कम जनसंख्या घनत्व की परिस्थिति में ही तर्कसंगत है। मानव जनसंख्या में वृद्धि के कारण, सामान्यों को किसी एक पक्ष के बाद दूसरे में छोड़ा जाना है .... पैदा करने की स्वतंत्रता सबका नाश कर देगी ..... अन्य अधिक मूल्यवान स्वतंत्रताओं को संरक्षित और पोषित करने का एकमात्र तरीका पैदा करने की स्वतंत्रता को त्यागना है और वह भी शीघ्र .... ऐसे ही, हम सामान्य की इस त्रासदी का अंत कर सकते हैं।"[7]

बॉक्स 17.2 : मनुष्य पर समस्याओं के उपसमूह

समकालीन प्राकृतिक विज्ञान की शाखाओं में यह बात विकसित हो गई है कि समस्याओं का एक उपसमूह है, जैसे जनसंख्या, आण्विक युद्ध तथा पर्यावरणीय भ्रष्टाचार, जिनका कोई तकनीकी समाधान नहीं है। समकालीन समाज वैज्ञानिकों के बीच एक और मान्यता है कि समस्याओं का एक उपसमूह है, जैसे जनसंख्या, आण्विक युद्ध, पर्यावरणीय भ्रष्टाचार और रहने योग्य शहरी वातावरण का पुनरुद्धार, जिनके लिए वर्तमान में कोई राजनीतिक समाधान नहीं हैं। इन दोनों उपसमूहों में अधिकांश महत्वपूर्ण समस्याएँ हैं जो समकालीन मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व के लिए खतरा हैं।[8]

पैदा करने की स्वतंत्रता का त्याग केवल सीमित अर्थ में ही सार्थक है। इसे संपूर्णता से नहीं माना जा सकता क्योंकि इसका अर्थ न केवल प्रजनन प्रक्रिया का बल्कि सामाजिकता के गहन अर्थ का भी नाश होगा जो भविष्य के साथ विश्व में हमारे होने को परिभाषित करता है। किसी तकनीकी समाधान की असंभावना को मानना यह इंगित करता है कि शायद हमें समस्या को किसी अन्य ढंग से समझना होगा, यानी भिन्न संदर्भगत अर्थों में।

उदाहरण के लिए, हमें सोचना चाहिए कि यह प्राकृतिक जगत्, जो प्रकृति की एक अभिव्यक्ति है, पर सभी का अधिकार है क्योंकि यह किसी एक व्यक्ति के श्रम का परिणाम नहीं है। इसके अतिरिक्त, बाँटने की प्रक्रिया तब तक संभव नहीं है, जब तक हम यह निर्धारित नहीं करते कि प्रत्येक व्यक्ति का कितना अंश है और उसे वह उत्पादन तथा वस्तुओं को बनाने के लिए किस प्रकार प्रयोग करना है। इसी कारण, प्राकृतिक संसाधनों को कानून एवं प्रथा[9] द्वारा "संपत्ति" माना गया है। दूसरे शब्दों में, वह क्या है जिसे बाँटा जा सकता है?

"अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम लाभ" आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था को परिभाषित करता है। यह लक्ष्य अप्राप्य है क्योंकि उत्पादन और पैदावार की औद्योगिक प्रक्रियाएँ, संरचनाएँ और व्यवस्थाएँ स्वयं को पोषित रखने के लिए सस्ते श्रम की बड़ी संख्या की माँग करती हैं। इसके अतिरिक्त, अधिकतम लाभ का मानकीकरण नहीं किया जा सकता है। किसी के लिए अधिकतम, किसी अन्य के लिए न्यूनतम हो सकता है। इसलिए, इस लक्ष्य को पाने के लिए, मानकीकरण की आवश्यकता है, जोकि असंभव है क्योंकि इससे उस स्वतंत्रता का अवमूल्यन होता है जिसकी यह अभिव्यक्ति है। यह फिर एक दिव्य वस्तु बन जाती है। इसका कोई तकनीकी समाधान नहीं हैं।

17.5 सामान्यों की संस्कृति

बाँटने और विनिमय का भाव अंतर्निहित है — एक ऐसा भाव जिसे सभी बाँटते हैं। बाँटने का एक तरीका विनिमय के माध्यम से है और दूसरा तरीका समान परिस्थिति का अंश बनना है। विभिन्न समुदायों ने इस संबंध को अपने-अपने सांस्कृतिक जगत्-दृश्य की दृष्टि से परिभाषित किया है।

अंतरण खेती संपोष्य होती है क्योंकि वह व्यक्तिगत अधिकारों और सामूहिक उत्तरदायित्व के संदर्भ में भूमि और वन के संबंध को परिभाषित करती है। संक्षेप में, अंतरण खेती ऐसी प्रणाली है जिसमें फसलों को बारी-बारी से काटकर वन के भूखंडों को रिक्त छोड़ दिया जाता है जिससे वन पुनर्जीवित हो सके। इस प्रणाली के श्रेष्ठ उदाहरण में एक परिवार दो वर्ष में एक बार एक रिक्त स्थान से दूसरे पर चला जाता है और ऐसा कम से कम चौबीस रिक्त स्थानों पर किया जाता है। इस प्रणाली का आंतरिक तर्क यह है कि किसी रिक्त स्थान पर एक वर्ष खेती करके उसे अड़तालीस वर्षों के लिए छोड़ दिया जाता है। इन अड़तालीस वर्षों में इस रिक्त स्थान पर पुनः वनारोपण हो जाता है। यहाँ यह देखना महत्वपूर्ण है कि किसी भी समय पर अलग-अलग रिक्त स्थान पुनर्जीवन की अलग-अलग अवस्थाओं में होते हैं। परिवार या लोगों के समूह (ये भिन्न परिवारों के हो सकते हैं) के पास उनके द्वारा किए गए कार्य के आधार पर उनकी पैदावार पर अधिकार होता है। जब किसी रिक्त स्थान को खाली छोड़ दिया जाता है तो वह "सामान्य" बन जाता है जहाँ से समूह के लोगों द्वारा ईंधन की लकड़ी, जड़ें और अन्य वन उत्पाद लिए जा सकते हैं। इस प्रणाली से पुनर्जीवन के लिए समय मिल जाता है। किसी खाली छोड़े गए रिक्त स्थान का सामान्य बनने का एक कारण यह होता है कि वन का पुनरुद्धार सामूहिक उत्तरदायित्व है। दूसरे शब्दों में भूमि पर किसी का कोई अधिकार नहीं होता है। केवल श्रम के उत्पाद के उपयोग का अधिकार होता है और उसके साथ सामान्यों के उपयोग को वन उत्पाद तक सीमित रखने और पुनर्जीवित होने देने का दायित्व भी होता है।

बस्तर, छत्तीसगढ़ में अबुझगढ़ के कोइटरों के बीच इस प्रणाली के पीछे वैश्विक दृष्टि यह होती है कि वन तलुरमुट्टी (धरती माता) का होता है। किसी आवासीय क्षेत्र की क्षेत्रीय सीमा वास्तव में उतनी ही होती है जितना किसी विशिष्ट तलुरमुट्टी का क्षेत्र होता है। यानी, तलुरमुट्टी की सहमति के बिना आवासीय क्षेत्र के लिए रिक्ती बनाना संभव नहीं है। कोइटरों का मानना है कि जहाँ ऐसा नहीं किया जाता, वहाँ शांति नहीं रहती — लोग बीमार हो जाते हैं, फसलें नहीं उगतीं और वनों में बाघ और साँप जैसे जानवर आवास में घुसकर प्रतिदिन के जीवन को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। इसके अतिरिक्त, तलुरमुट्टी के प्रति सभी कर्त्तव्यों को पूरा करके स्थिर सामाजिक जीवन जिया जा सकता है। इनमें नए खेती चक्र को आरंभ करने से पूर्व और नई फसल तथा आम, इमली जैसे फल खाने से पूर्व प्रसाद चढ़ाया जाता है। तलुरमुट्टी के साथ संबंधों में किसी प्रकार की अव्यवस्था, सामाजिक जीवन को खराब कर देती है।

कसेर गयाता की संस्था इस संबंध को निभाती है। किसी विशिष्ट वंश का कोई व्यक्ति कसेर गयाता कहलाता है। वह आवासीय क्षेत्र और तलुरमुट्टी की ओर से देख-रेख करता है। उसे आवास का पावन इतिहास पता होता है — यहाँ सीमाओं के भीतर पावन स्थल बने होते हैं। यह स्थान कार्य स्थान के आस-पास होते हैं। इन सभी पावन स्थानों में से, सबसे पवित्र वह स्थान है जहाँ तलुरमुट्टी का मंदिर स्थित है। यहाँ कोई गतिविधि नहीं की जा सकती है।

वार्लियों में, "किसान फसल को नष्ट करने वाले चूहों के लिए जहरीला खाना डालने से मना कर देता है, "किंतु फसल पर पहला अधिकार चूहे का होता है".... वार्ली किसान कहता है ...."जब कोई शेर या तेंदुआ झुंड में से किसी बकरी या भेड़ को ले जाता है तो बुजुर्ग कहते हैं : "जो भी खाने योग्य है, खाया जाएगा, जानवर भी भूखे होते हैं।"[10]

मूल्य सामान्यों के श्रम सिद्धांत के अनुसार, हम जगत के उस भाग में रहते हैं, जहाँ मानव श्रम का निवेश नहीं हुआ है। इसलिए मनुष्य उसका मालिक नहीं बन सकता। इसमें संपूर्ण प्रकृति— मानव तथा गैर-मानव शामिल हैं। यह प्रकृति जगत "प्रकृति की क्रिया" द्वारा बनाया गया है जो मनुष्य के कार्य या श्रम पर निर्भर नहीं करता है। कार्य करने के लिए प्रकृति में स्व-चालित प्रणालियों के लिए आवश्यक समय और स्थान का मापक कई हजार वर्षों का होता है। इन प्रणालियों से प्रकृति की प्रचुरता तथा विषमता में रचनात्मक और सतत रूप से सहयोग मिलता है। इसमें प्रकृति की पुनर्जीवन की क्षमता होती है।

औद्योगिक क्रांति के लगभग चार सौ वर्षों के इतिहास में हमने देखा है कि रचनात्मक स्व-नियंत्रित प्रणालियों के लिए समय और स्थान कम हो गया है जिसके कारण विभिन्नता तथा प्रचुरता अब असीमित और अपरिमित नहीं रह गई हैं। इससे न केवल प्रजातियों के जीवन बल्कि स्वयं जीवन की मूलभूत परिस्थितियों का ह्रास हुआ है। अपने अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर हम पुनरुद्धार तथा पुनर्जीवित होने की क्षमता के ह्रास का सामना कर रहे हैं।

सोचें और करें 17.02

क्या "सामान्य" का विचार मन शरीर और आत्मा की स्वतंत्रताओं से जुड़ा हुआ है? अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।

इस संकट से उबरने के लिए मनुष्य और प्रकृति के संबंध को प्रकृति के लिए अपनी रचनात्मक क्षमता को दोबारा प्राप्त करने के लिए आवश्यक स्थान और समय उपलब्ध करवाना पड़ेगा। समय और स्थान पर प्रकृति के अधिकार को पहचान कर तथा इन अधिकारों का उल्लंघन न करने वाले अभिकल्पना तंत्रों के उपयोग को स्वीकृति देकर, प्रकृति के इस कार्य को मनुष्य के कार्य से बचाया जा सकता है। वास्तव में, मनुष्यों को प्रकृति से केवल उतना ही लेना चाहिए जितने से दूसरे लोगों को कमी न महसूस हो और प्रकृति को कार्य करने के लिए रचनात्मक प्रक्रियाओं के लिए स्थान और समय भी मिल सके।

17.6 निष्कर्ष

प्रकृति की स्व-नियंत्रक क्षमता एक उपहार है। मानव अस्तित्व की संभावना के लिए यह एक स्थिति है। प्रकृति के कार्य को स्थान और समय कैसे मिल सकता है जब प्रकृति के साथ मनुष्य का संबंध समूहों द्वारा संचालित होता है?

सामान्यों का विचार संपत्ति तक सीमित न होकर मन शरीर और उससे संबंधित आत्मा की स्वतंत्रताओं तक सीमित है। एक चीज जो समान है वह स्वतंत्रता है जिसके बिना न

तो मन है और न ही आत्मा। ये तीनों प्रकृति के उपहार हैं। हम स्वतंत्र नहीं हो सकते जब तक हम एक दूसरे के साथ सहयोग न करें। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई भी व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्रता में अपने बूते पर नहीं रह सकता। हालाँकि, दूसरों के सहयोग से वह रह सकता है। यानी, मेरी स्वतंत्रता दूसरे की स्वतंत्रता से जुड़ी हुई है। आजाद होने के लिए एक शर्त स्वतंत्रता है। "स्वयं" से आजादी, स्वतंत्रता का श्रेष्ठतम रूप है। इसके बिना दूसरा आजाद नहीं रह सकता। संपत्ति संबंध को यह सुनिश्चित करने के लिए अभिकल्पित किया जा सकता है कि उत्पादन के लिए इसका उपयोग करने की प्रक्रिया में कोई अन्य नहीं होता। इस प्रकार के संपत्ति संबंध भारत में वनवासियों के लिए "सामान्य" होते हैं। पावन बाग इसका एक उदाहरण है। ये सामान्य पुनरुद्धार और नवशक्ति का स्रोत होते हैं। पावन बागों को उनकी स्व-पुनरुद्धार तथा स्व-प्रजनन की क्षमता "सामान्य" की श्रेणी में लाती है। इस क्षमता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है; यह अनमोल है क्योंकि इसके समय और स्थान का मापक, मानवीय मापक से कहीं बाहर है। इसलिए प्रकृति का वह क्षेत्र, जिसे मापा नहीं जा सकता; अनछुआ रह जाता है। यह अगम्य है।

इस समस्या के कोई तकनीकी समाधान नहीं है, यानी कोई तकनीक या प्रौद्योगिकी इसे माप नहीं सकती। इस कारण ये "सामान्य" बनते हैं। ये "सामान्य" अपरिहार्य हैं और इस कारण लोगों के इसके साथ संबंध हैं। इस प्रकार सामान्यों के पुनरुद्धार के लिए संघर्ष सामुदायिक स्वामित्व के पुनर्स्थापन तक सीमित नहीं हैं। यह इस समझ पर आधारित होना चाहिए कि प्रकृति के पास भी अभिव्यक्ति का इतना ही अधिकार है और यही हमारी आजादी है। समझाए गए सांस्कृतिक तंत्र केवल इस बात का उदाहरण हैं कि भारत के अनेक भागों की भूमि पर क्या मौजूद है। उनसे हम अर्थव्यवस्था के प्रबंधन के वैकल्पिक सिद्धांतों को सीखते हैं। ये हो सकता है, सार्वभौमिकीय न हों। हालाँकि, उसी कारण उन्हें स्व-अभिव्यक्ति के लिए स्थान दिया जाना चाहिए और उन्हें निजी या सार्वजनिक संपत्ति में रूपांतरित नहीं किया जाना चाहिए।

17.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रभु, प्रदीप 2003. प्रकृति, संस्कृति तथा विषमता : जीवन के देशी ढंग। स्मितु कोठारी, इम्तियाज अहमद तथा हेल्मट रेफील्ड, (संपा.), *"दि वैल्यू ऑफ नेचर इकालॉजिकल पॉलिटिक्स इन इंडिया"*, नई दिल्ली : रेनबो प्रकाशन।

सिंह छहत्रपति, 1986. *कॉमन प्रॉपर्टी एंड कॉमन पॉवर्टी- इंडियाज फॉरेस्ट्स, फॉरेस्ट डवेलर्स एंड दि लॉ*, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

अंत टिप्पणी

1. अंतिम बार 1 अगस्त 2005 को देखी गई वेबसाइट

   http://www.friendsofthecommons.org/index.html

2. एन.एस. जोधा सामान्य संपत्ति संसाधन और भारत के सूखे क्षेत्र उनासेल्वा में ग्रामीण गरीबी की गतिकी - सं. 180 - खंड 46 - 1995/1।

3. एम. ´सरीन भारत में संयुक्त वन प्रबंधन : उनासेल्वा में उपलब्धियाँ और असंबोधित चुनौतियाँ - सं 180 - खंड 46 - 1995/1

4. "गिरता खाद्यान्न उत्पादन और भोजन की उपलब्धता देश के सामने दो सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। जिस प्रकार हम कृषि पर ध्यान देते हैं उसमें कुछ बहुत भारी गड़बड़ी है। 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के कृषि और समान गतिविधियों में कार्यरत होने तथा लगभग इसी प्रतिशत के किसानों के औसत 0.2 हेक्टेयर भूमि पर गुड़ाई करने

के चलते और तमाम परेशानियों से जूझने के कारण, इस संतुलन को ठीक करने का समय आ गया है ...." स्मितु कोठारी, इम्तियाज अहमद तथा हेल्मट रेफील्ड, 2003 सं. में विषमता तथा भोजन सुरक्षा की राजनीति पर देवेन्द्र शर्मा। दि वेल्यू ऑफ नेचर इकोलॉजिकल पॉलिटिक्स इन इंडिया। नई दिल्ली, रेनबो प्रकाशन।

5. "सामान्यों की त्रासदी", गैरेट हार्डिन, विज्ञान, 162 (1968) : 1243-1248 में।

6. दार्शनिक व्हाइटहेड के बाद "त्रासदी" शब्द : "नाटकीय त्रासदी का सार दुख नहीं है। यह चीजों के ग्लानिरहित भाव से कार्य करने की सच्चाई में है।" वह आगे कहता है, "भाग्य की इस अवश्यंभाविता को केवल मानव जीवन में किस्सों के संदर्भ से दर्शाया जा सकता है जिनमें वास्तव में दुख होता है। क्योंकि केवल इन्हीं के द्वारा, नाटक में पलायन की निरर्थकता को दिखाया जा सकता है।"

7. "सामान्यों की त्रासदी", गैरेट हार्डिन, विज्ञान 162 (1968) : 1243-1248 में।

8. बेटिल क्रो (1969) सामान्य की त्रासदी का पुनरागमन - डब्ल्यू. एच. फ्रीमैन, 1977 सामान्यों का प्रबंधन गैरेट हार्डिन एवं जॉन बेडेन में पुनर्मुद्रित।

9. संपत्ति को दो श्रेणियों में बाँटा जाता है : निजी एवं सामान्य। निजी संपत्ति के अंतर्गत, केवल एक व्यक्ति और उसके परिवार का संसाधनों और पूंजी से होने वाले लाभ पर विधिक अधिकार होता है। सामान्य संपत्ति के अंतर्गत, सुगमता और लाभ एक व्यक्ति या उसके परिवार तक सीमित नहीं होते बल्कि अनेक लोगों द्वारा सार्वजनिक रूप से बाँटे जाते हैं। सार्वजनिक संपत्ति को फिर दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है: एक वह जो व्यवस्थित श्रम का उत्पाद है और दूसरा, जो प्राकृतिक श्रम का उत्पाद है। पहली श्रेणी में सार्वजनिक यातायात, मनोरंजन के स्थान, सेवा कार्यालय, अस्पताल, आदि होते हैं। इन चीजों को अब सार्वजनिक संपत्ति कहा जाता है। दूसरी श्रेणी में प्राकृतिक वन, तालाब, नदियाँ, खनिज, ईंधन, रेत, मिट्टी, चूना और अन्य प्रकार के पत्थर आदि होते हैं। छत्रपति सिंह की कॉमन प्रॉपर्टी एंड कॉमन पॉवर्टी इंडियाज फॉरेस्ट्स, फॉरेस्ट ड्वेलर्स एंड दि लॉ। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली. 1986 पृष्ठ 11.

10. प्रदीप प्रभु. प्रकृति, संस्कृति और विषमता : जीवन के अपने ढंग। स्मितु कोठारी, इम्तियाज अहमद तथा हेल्मट रेफील्ड, 2003 सं. में। दि वेल्यू ऑफ नेचर इकोलॉजिकल पॉलिटिक्स इन इंडिया। नई दिल्ली, रेनबो प्रकाशन .... पृष्ठ 77.